नागरिक विविध

न्यायमूर्ति आर.एस. नरूला के समक्ष,

लेख राज,-याचिकाकर्ता।

बनाम

महाप्रबंधक, उत्तर रेलवे, बड़ौदा हाउस, नवीन

दिल्ली, आदि,-प्रतिवादी।

1967 की सिविल रिट संख्या 371।

19 जनवरी 1972.

भारतीय रेलवे स्थापना कोड, खंड I - नियम 1735 और 1736 - मंडल कार्मिक अधिकारी द्वारा पारित आदेश - क्या मंडल अधीक्षक या मुख्य कार्मिक अधिकारी द्वारा स्वतः संज्ञान पर पुनर्विचार किया जा सकता है टिंडर नियम 1736 - नियम द्वारा प्रदत्त संशोधन और समीक्षा की शक्तियां - के बीच अंतर - कहा गया - उसके तहत पारित आदेश में प्रासंगिक वैधानिक नियम का उल्लेख न करना - क्या आदेश को अमान्य करता है।

अभिनिर्धारित किया गया कि भारतीय रेलवे स्थापना संहिता, खंड I में शामिल उत्तर रेलवे अनुशासन और अपील नियमों के नियम 1735 और 1736 को संयुक्त रूप से पढ़ने से पता चलता है कि पूर्व नियम के तहत भारत के राष्ट्रपति में सीमित शक्तियों की तुलना में कहीं अधिक व्यापक शक्तियां निहित हैं। शक्तियां जो बाद के नियम में नामित अधिकारियों में निहित हैं। यदि एक ही शक्ति दो अलग-अलग नियमों द्वारा दो अलग-अलग प्राधिकरणों में निहित है, तो उच्च प्राधिकारी में शक्ति का निहित होना निचले प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र को उसी शक्ति का प्रयोग करने से बाहर नहीं करता है, जब इसे किसी वैधानिक नियम द्वारा विशेष रूप से ऐसे निचले प्राधिकारी में निहित किया गया हो। इसलिए नियमों का नियम 1736 पूरी तरह से मंडल अधीक्षक और मुख्य कार्मिक अधिकारी को अपने स्वयं के प्रस्ताव पर मंडल कार्मिक अधिकारी द्वारा पहले पारित किए गए आदेश पर पुनर्विचार करने के लिए अधिकृत करता है। (पैरा 3).

अभिनिर्धारित किया गया कि नियम 1736 के पहले वाक्य द्वारा उसमें नामित प्राधिकारियों को प्रदत्त पुनरीक्षण की शक्ति उस नियम के दूसरे वाक्य के आधार पर उन प्राधिकारियों को प्रदत्त समीक्षा की शक्ति से तीन मायनों में भिन्न है। (ए) जबकि वे अधिकारी जुर्माना लगाने वाले मूल आदेश को भी संशोधित कर सकते हैं, वे केवल अपीलीय आदेश की समीक्षा कर सकते हैं; (बी) जबकि पुनरीक्षण केवल पुनरीक्षण प्राधिकारी के अधीनस्थ अधिकारी द्वारा पारित कुछ आदेश का होना चाहिए, समीक्षा की शक्ति उस प्राधिकारी में निहित है जिसने समीक्षा के तहत आदेश पारित किया या उसके पूर्ववर्ती में; और (सी) जबकि जिन आधारों पर किसी आदेश को संशोधित किया जा सकता है, वे किसी भी तरह से सीमित नहीं हैं, समीक्षा की शक्ति नियम में निर्धारित सीमाओं से सीमित है
यानी, यदि मामले पर नई रोशनी डाली जाती है या कर्मचारी का आचरण लगाए गए दंड को कम करने का मामला स्थापित करता है। (पैरा 9).

निर्धारित किया गया कि उस नियम के तहत पारित आदेश में प्रासंगिक वैधानिक नियम का उल्लेख न करने मात्र से आदेश अमान्य नहीं हो जाता, जो अन्यथा वैध है। (पैरा 9).
भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत याचिका में प्रार्थना की गई है कि प्रतिवादी संख्या 2 के आदेशों को रद्द करते हुए रिट आदेश या निर्देश जारी किया जाए, जो याचिकाकर्ता को प्रतिवादी संख्या 4 के माध्यम से, उसके पत्र दिनांक 15 सितंबर, 1966 के माध्यम से दिया गया था और आगे प्रार्थना की गई थी कि याचिका की लागत भी प्रदान की जाए।

याचिकाकर्ता के वकील आर. पी. बाली।
एच. एस. गुजराल, प्रतिवादियों के वकील।

निर्णय

न्यायमूर्ति नरूला - मुख्य कार्मिक अधिकारी, उत्तर रेलवे का आदेश, दिनांक 15 सितंबर, 1966 (अनुलग्नक 'एच') ने कम जुर्माना बढ़ाने की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए याचिकाकर्ता को

16 सितंबर, 1966 से रेलवे सेवा से हटा दिया जो याचिकाकर्ता पर पहले भी पास और पी.टी.ओ. प्राप्त करने के लिए जुर्माना लगाया गया था। अपने भाई और बहन के लिए, अपने पिता के जीवनकाल के दौरान, यह झूठी घोषणा करके कि उनके पिता जीवित नहीं थे, इस याचिका में संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत इस आधार पर चुनौती दी गई है कि प्रतिवादी नंबर 2 (मुख्य कार्मिक अधिकारी, उत्तर रेलवे) को ऐसी कोई शक्ति निहित नहीं है और यह कि ऐसी शक्ति केवल भारतीय रेलवे प्रतिष्ठान, कोड वॉल्यूम I के नियम 1735 के तहत भारत के राष्ट्रपति में निहित है। याचिका को जन्म देने वाले तथ्य एक संकीर्ण दायरे में हैं और वास्तव में इस स्तर पर विवादित नहीं हैं।

(2) आरोपों का विवरण, दिनांक 16 मई 1964 (अनुलग्नक 'ए' का उद्धरण) याचिकाकर्ता को 17 मई 1964 को दिया गया। एक नियमित जांच हुई जिसमें याचिकाकर्ता ने भाग लिया। जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को अन्य आरोप से मुक्त करते हुए अपनी रिपोर्ट संलग्नक 'बी' प्रस्तुत की, जो अधिक प्रासंगिक नहीं है, लेकिन उसे उस आरोप का दोषी ठहराया जिसकी अनुलग्नक 'ए' एक प्रति है। इसके बाद, याचिकाकर्ता को यह बताने के लिए नोटिस, दिनांक 22 अक्टूबर, 1965, (अनुलग्नक 'सी') दिया गया कि उसे सेवा से क्यों नहीं हटाया जाना चाहिए। याचिकाकर्ता ने कारण बताओ नोटिस के जवाब में अपना विस्तृत स्पष्टीकरण और अभ्यावेदन, दिनांक 30 अक्टूबर, 1965 (अनुलग्नक 'डी') प्रस्तुत किया। आदेश, दिनांक 17 नवंबर, 1965 (अनुलग्नक 'ई') द्वारा, याचिकाकर्ता को दो साल के लिए अगले निचले पद (केबिनमैन) पर पदावनत कर दिया गया और यह निर्देश दिया गया कि उसकी कटौती से उसकी भविष्य की वेतन वृद्धि भी प्रभावित होगी। याचिकाकर्ता ने माना कि सजा के उपर्युक्त आदेश के खिलाफ कोई अपील नहीं की गई। मुख्य कार्मिक अधिकारी, उत्तर रेलवे ने निर्णय लिया कि नवंबर, 1965 में मंडल कार्मिक अधिकारी द्वारा दी गई सजा अपर्याप्त थी। उनके आदेशों के तहत, मुख्य कार्मिक अधिकारी ने 16 मार्च, 1966 को याचिकाकर्ता को एक नया कारण बताओ नोटिस (अनुलग्नक 'एफ') जारी किया, जिसमें यह कहा गया था कि याचिकाकर्ता के अपराध की गंभीरता ऐसी थी कि गंभीर अपराध की सजा की आवश्यकता थी और याचिकाकर्ता को लिखित रूप से यह बताने के लिए कहा गया कि उस पर सेवा से निष्कासन का बढ़ा हुआ जुर्माना क्यों नहीं लगाया जाना चाहिए। रिट याचिका का अनुबंध 'जी' याचिकाकर्ता

द्वारा कारण बताओ नोटिस अनुबंध 'एफ' के लिए प्रस्तुत विस्तृत उत्तर की एक प्रति है। उत्तर पर विचार करने के बाद, मुख्य कार्मिक अधिकारी, उत्तर रेलवे द्वारा 15 सितंबर, 1966 को विवादित आदेश पारित किया गया। याचिकाकर्ता का दावा है कि उसने उस आदेश के खिलाफ अपील की है और कथित अपील की एक प्रति,याचिका के अनुलग्नक 'I' के रूप में, दिनांक 8 अक्टूबर, 1966 को दायर की है। याचिकाकर्ता ने इस मामले में अपील की वास्तविक फाइलिंग को दर्शाने वाली कोई पावती प्रस्तुत नहीं की है। श्री आर. पी. बाली का कहना है कि यह डाक द्वारा नहीं भेजा गया था, बल्कि कुछ क्लर्क को सौंपा गया था, जिनके हस्ताक्षर उन्हें अपील के ज्ञापन की एक प्रति पर मिले हैं। वह प्रति भी दाखिल नहीं की गयी है। उत्तरदाताओं ने कहा है कि ऐसी कोई अपील उनके रिकॉर्ड पर उपलब्ध नहीं है। उत्तरदाताओं के लिखित बयान में निहित उक्त कथन के उत्तर में कोई प्रति-शपथ पत्र दाखिल नहीं किया गया है। जो भी हो, तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता ने उत्तर रेलवे के महाप्रबंधक को दिनांक 17 जनवरी, 1967 (अनुलग्नक 'जे') की मांग का नोटिस दिया था और रेलवे अधिकारियों से कोई समाधान नहीं मिलने पर अंततः 14 मार्च, 1967 को याचिका दायर की। कार्यालय मंडल अधीक्षक, उत्तर रेलवे, नई दिल्ली के सहायक कार्मिक अधिकारी क्रमांक 1 के शपथ पत्र में कहा गया है कि दो वर्ष की अवधि के लिए प्रत्यावर्तन की मूल सजा को मुख्य कार्मिक अधिकारी , उत्तर रेलवे, द्वारा पर्याप्त नहीं माना गया था। क्योंकि अपराध (आरोप) की गंभीरता ऐसी थी कि कड़ी सजा की आवश्यकता थी और उक्त अधिकारी मंडल कार्मिक अधिकारी द्वारा पारित आदेशों को संशोधित करने के लिए उत्तर रेलवे अनुशासन और अपील नियमों के नियम 1736 के तहत सक्षम था। जैसा कि पहले ही कहा गया है, रिटर्न में यह बताया गया है कि मामले के रिकॉर्ड में महाप्रबंधक को संबोधित 8 अक्टूबर 1966 या किसी अन्य तारीख की कोई अपील नहीं पाई गई है। गुण-दोष के आधार पर याचिकाकर्ता के बचाव के संबंध में कि वह नियमों से अनभिज्ञ था, लिखित बयान में कहा गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा अनपढ़ होने के कारण नियमों की अज्ञानता की दलील देना स्वीकार्य नहीं है, खासकर तब जब उसने खुद घोषणा की थी कि उसके पिता जब वह वास्तव में जीवित था तब जीवित नहीं था। उत्तरदाताओं द्वारा नियम 1736 की एक प्रति उनके रिटर्न में अनुलग्नक 'आर/' के रूप में दाखिल की गई है।

(3) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री आर.पी.बाली ने सबसे पहले यह तर्क दिया है कि उपर्युक्त नियमों के नियम 1735 की उपस्थिति में, मंडल अधीक्षक या मुख्य कार्मिक अधिकारी को स्वतः संज्ञान लेकर सजा बढ़ाने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है जो की याचिकाकर्ता पर लगाई गई थी और ऐसी शक्ति विशेष रूप से भारत के राष्ट्रपति में निहित है। नियम 1735 और 1736 नीचे उद्धृत हैं: -

"1735. इन नियमों में किसी बात के होते हुए भी, राष्ट्रपति, अपने स्वयं के प्रस्ताव पर या अन्यथा, मामले के रिकॉर्ड मंगाने के बाद, किसी भी आदेश की समीक्षा कर सकता है जो इन नियमों के तहत किया गया है या अपील योग्य है और आयोग के साथ परामर्श के बाद, "जहां ऐसा परामर्श आवश्यक है-

(ए) आदेश की पुष्टि, संशोधन या रद्द करना;
(बी) आदेश द्वारा लगाए गए जुर्माने को लागू करना या अलग करना, कम करना, पुष्टि करना या बढ़ाना;
(सी) मामले को उस प्राधिकारी को भेज देगा जिसने आदेश दिया था या किसी अन्य प्राधिकारी को ऐसी आगे की कार्रवाई या जांच का निर्देश देने के लिए जिसे वह मामले की परिस्थितियों में उचित समझता है; या
(डी) ऐसे अन्य आदेश पारित करेगा जो वह उचित समझे:

बशर्ते कि-
(i) जुर्माना लगाने या बढ़ाने का आदेश तब तक पारित नहीं किया जाएगा जब तक कि संबंधित व्यक्ति को ऐसे बढ़े हुए जुर्माने के खिलाफ कोई प्रतिनिधित्व करने का अवसर नहीं दिया गया हो जो वह करना चाहता हो;
(ii) यदि राष्ट्रपति नियम 1707 के उप-नियम (1) के खंड (iv) से (vii) में निर्दिष्ट किसी भी दंड को लगाने का प्रस्ताव करता है, ऐसे मामले में जहां नियम 1708 के तहत जांच नहीं हुई है, तो वह नियम 1719 के प्रावधानों के अनुसार अधीन होगा, निर्देश दें कि ऐसी जांच की जाए और उसके बाद ऐसी जांच की कार्यवाही पर विचार करने के बाद और संबंधित व्यक्ति को इस तरह के दंड के खिलाफ कोई भी अभ्यावेदन करने का अवसर देने के बाद, जो वह करना चाहे, ऐसे आदेश पारित करें जो उचित न हों।

1736. (1) रेलवे बोर्ड, एक महाप्रबंधक और महाप्रबंधक द्वारा इस संबंध में निर्दिष्ट विभाग के उप प्रमुख या मंडल अधीक्षक के पद से नीचे का कोई भी अधिकारी अपने स्वयं के प्रस्ताव पर या अन्यथा उनके अधीनस्थ किसी प्राधिकारी द्वारा पारित कोई आदेश संशोधित करने की शक्ति नहीं रखेगा। उनके पास उनके द्वारा या किसी पूर्ववर्ती द्वारा अपील पर पारित पहले के आदेश पर पुनर्विचार करने की भी शक्ति होगी यदि अगली तारीख पर या तो मामले पर नई रोशनी डाली जाती है या कर्मचारी ने अपने आचरण से लगाए गए दंड को कम करने के लिए मामला स्थापित किया है।

:

बशर्ते कि इस उप-नियम के तहत कोई भी कार्रवाई समीक्षा किए जाने वाले आदेश की तारीख के छह महीने से अधिक समय के बाद शुरू नहीं की जाएगी, जब तक कि लगाए गए जुर्माने को कम करने या रद्द करने का प्रस्ताव न हो।

(2) जब ऊपर उप-नियम (1) में निर्दिष्ट कोई प्राधिकारी किसी रेलवे कर्मचारी पर लगाए गए दंड को बढ़ाने का प्रस्ताव करता है, अन्यथा उसके द्वारा की गई अपील के परिणाम के रूप में, तो वह संबंधित रेलवे कर्मचारी को अपना इरादा बताएगा, इसके कारणों के साथ, और उनसे यह कारण बताने के लिए कहें कि क्यों नहीं बढ़ाया गया जुर्माना लगाया जाना चाहिए। इस संचार पर रेलवे कर्मचारी के उत्तर पर विचार करने के बाद, वह ऐसे आदेश पारित करेगा जैसा वह उचित समझे।"

उपरोक्त उद्धृत नियमों को पढ़ने से पता चलता है कि नियम 1735 के तहत भारत के राष्ट्रपति में नियम 1736 में नामित अधिकारियों में निहित सीमित शक्तियों की तुलना में कहीं अधिक व्यापक शक्तियां निहित हैं। किसी भी स्थिति में, यदि एक ही शक्ति दो के पास निहित है दो अलग-अलग प्राधिकरणों में अलग-अलग नियमों के बावजूद, यह तर्क नहीं दिया जा सकता है कि उस शक्ति को उच्च प्राधिकारी में निहित करने से निचले प्राधिकारी के उसी शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार क्षेत्र बाहर हो जाता है, हालांकि इसे वैधानिक नियम द्वारा विशेष रूप से ऐसे निचले प्राधिकारी में निहित किया गया है। वृद्धि के लिए नोटिस छह महीने के भीतर जारी किया गया था। याचिका में न तो यह सुझाव दिया गया है और न ही मेरे समक्ष यह तर्क दिया गया है कि नियम 1736 के प्रयोजनों के लिए मंडल अधीक्षक या मुख्य कार्मिक अधिकारी को महाप्रबंधक द्वारा निर्दिष्ट नहीं किया गया था।

न ही यह सुझाव दिया गया है कि मुख्य कार्मिक अधिकारी का पद रेलवे विभाग के उप प्रमुख से नीचे है। इन परिस्थितियों में, नियम 1736 मंडल अधीक्षक और मुख्य कार्मिक अधिकारी को अपने स्वयं के प्रस्ताव पर उस आदेश पर पुनर्विचार करने के लिए पूरी तरह से अधिकृत करता है जो मंडल कार्मिक अधिकारी (अनुलग्नक 'ई') द्वारा पहले पारित किया गया था। इसमें कोई विवाद नहीं है कि मंडल कार्मिक अधिकारी मुख्य कार्मिक अधिकारी के साथ-साथ मंडल अधीक्षक के अधीनस्थ एक प्राधिकारी है। इसलिए, श्री बाली का पहला तर्क किसी भी बल से रहित है।

(4) फिर यह तर्क दिया गया कि आक्षेपित आदेश (अनुलग्नक 'एच') रद्द किए जाने योग्य है क्योंकि यह बोलने वाला आदेश नहीं था, खासकर तब जब उस आदेश के खिलाफ अपील का वैधानिक अधिकार नियमों द्वारा प्रदान किया गया हो। माना कि रिट याचिका में ऐसा कोई मुद्दा नहीं उठाया गया। याचिका का अनुलग्नक 'एच' पूरे आदेश की एक प्रति है जिसके तहत याचिकाकर्ता पर जुर्माना लगाया गया था। यह आदेश के ऑपरेटिव भाग का मात्र संचार है। याचिकाकर्ता ने आदेश की प्रति के लिए आवेदन नहीं किया। उनका दावा है कि उन्होंने उस आदेश की प्रति प्राप्त किए बिना ही उसके खिलाफ अपील दायर कर दी है। यहां तक कि कथित अपील याचिका (जिसकी एक प्रति उन्होंने इस रिट याचिका के साथ दायर की है) में भी आदेश के बोलने योग्य न होने या उसकी प्रति उन्हें उपलब्ध न कराए जाने के बारे में कोई शिकायत नहीं की गई थी।संचार अनुबंध 'एच' में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उसमें उल्लिखित जुर्माना मुख्य कार्मिक अधिकारी के आदेशों के तहत याचिकाकर्ता को दिया गया था। इससे पता चलता है कि अनुलग्नक 'एच' सजा का मूल आदेश या उस पूरे आदेश की प्रतिलिपि होने का भी दावा नहीं करता है। श्री बाली का कहना है कि आदेश का समर्थन करने वाले कारण आदेश में ही उपलब्ध होने चाहिए और जुर्माना लगाने के आदेश की वैधता का समर्थन करने के लिए यह तर्क नहीं दिया जा सकता है कि आधार फ़ाइल में उपलब्ध हैं। यहां वह स्थिति नहीं है। आधारों को फ़ाइल से पुनर्निर्मित नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि आदेश से ही पाया जा सकता था यदि याचिकाकर्ता ने या तो इसकी प्रति प्राप्त की होती या रिट याचिका में इस प्रकार का कोई आधार लिया होता जिससे उत्तरदाताओं को संपूर्ण आदेश की एक प्रति प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती। मैं रिट याचिका में इस तरह के तर्क का कोई सुझाव

दिए बिना याचिकाकर्ता को याचिका की सुनवाई में पहली बार इस बिंदु को उठाने की अनुमति देना उचित नहीं मानता।

(5) श्री बाली ने आगे कहा है कि रेलवे कर्मचारी पर लगाए गए जुर्माने को बढ़ाने की शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब मामले पर कुछ नई रोशनी डाली जाए। इस प्रस्ताव के लिए, उन्होंने हरबंस लाई अरोड़ा बनाम मंडल अधीक्षक, मध्य रेलवे, झाँसी और अन्य[1] में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले और श्री स्वदेश भूषण घोष बनाम चीफ वाणिज्यिक अधीक्षक, पूर्वी रेलवे और अन्य[2] में कलकत्ता उच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है। उन दोनों मामलों में रेलवे स्थापना कोड खंड I के नियम 1725 (ए) का निपटारा किया जा रहा था। नियम 1736 की भाषा पर पहले ही ध्यान दिया जा चुका है। नियम का पहला वाक्य अधिकारियों को उनके अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा पारित आदेशों की समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करने के लिए अधिकृत करता है। वह शक्ति किसी सीमा से बंधी नहीं है। नियम का दूसरा वाक्य उन्हीं अधिकारियों को अपील में पारित अपने पहले के आदेशों की समीक्षा करने की शक्ति प्रदान करता है। उन्हीं प्राधिकारियों के पहले के अपीलीय आदेशों की समीक्षा की यह शक्ति वृद्धि के मामले में मामले पर नई रोशनी डालने की सीमा और दंड में कमी के मामले में शमन के लिए मामला स्थापित करने वाले कर्मचारी के बाद के आचरण के अधीन है। मुझे समीक्षा की शक्ति पर नियम द्वारा लगाई गई सीमाओं को पुनरीक्षण की वैधानिक शक्ति में आयात करने का कोई औचित्य नजर नहीं आता, जब नियम बनाने वाले प्राधिकारी ने एक मामले में दूसरे के खिलाफ सचेत विचलन किया हो।

(6) इलाहाबाद और कलकत्ता उच्च न्यायालयों के निर्णयों के तर्क और प्रभाव को समझने के लिए, नियम 1725(ए) को पुनः प्रस्तुत करना आवश्यक है क्योंकि एक ओर उस नियम और दूसरी ओर नियम 1736 के बीच विराम चिह्न के तरीके में थोड़ा अंतर है। :–

"1725(ए) रेलवे बोर्ड, एक महाप्रबंधक, और कोई भी अधिकारी जो विभाग के उप प्रमुख के पद से नीचे न हो, महाप्रबंधक द्वारा इस संबंध में निर्दिष्ट एक मंडल अधीक्षक के पास अपने अधीनस्थ

---

[1] ए.आई.आर.1960 इलाहाबाद 164.

[2] ए.आई.आर.1961 कलकत्ता 93.

प्राधिकारी द्वारा पारित किसी भी आदेश को अपने स्वयं के प्रस्ताव पर या अन्यथा संशोधित करने की शक्ति होगी और उनके पास उनके या पूर्ववर्ती द्वारा किसी अपील पर पारित पहले के आदेश पर पुनर्विचार करने की शक्ति भी होगी, यदि बाद की तारीख में या तो मामले पर नई रोशनी डाली जाती है या अपने बाद के आचरण से कर्मचारी ने लगाए गए जुर्माने को कम करने के लिए एक मामला स्थापित किया है।

यह देखा जाएगा कि पुनरीक्षण और समीक्षा की शक्ति को नियम 1725 में एक वाक्य में एक साथ जोड़ दिया गया था। अब नियम में दोनों शक्तियों को दो अलग-अलग वाक्यों में विभाजित कर दिया गया है। यदि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कलकत्ता उच्च न्यायालय के फैसले को पढ़ा जाए, तो यह पाया जाएगा कि नियम में बदलाव, जो याचिकाकर्ता पर लागू होता है, ने उसके लिए कलकत्ता उच्च न्यायालय के तर्क का लाभ उठाना असंभव बना दिया है। कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति सिन्हा ने इस बिंदु को निम्नलिखित शब्दों में निपटाया: -
“नियम 1725 का खंड (ए) उसमें उल्लिखित अधिकारियों को अपने अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा पारित किसी भी आदेश को संशोधित करने की शक्ति देता है। खंड (ए) को पढ़ने से मुझे ऐसा लगता है कि इसकी व्याख्या यह कहकर करना संभव है कि ऐसा प्राधिकारी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा पारित किसी भी आदेश को संशोधित करने या पहले के आदेश पर पुनर्विचार करने का हकदार होगा, यदि बाद की तारीख में, या तो मामले पर नई रोशनी डाली गई है, या उसके बाद के आचरण से कर्मचारी ने लगाए गए दंड को कम करने के लिए मामला स्थापित किया है।इस दृष्टि से मामले में पुनरीक्षण और पुनर्विचार की शक्ति दोनों दो बातों पर निर्भर होंगी। या तो मामले पर नए सिरे से प्रकाश डाला जाना चाहिए या उसके बाद के आचरण से कर्मचारी को दंड में कमी मिलनी चाहिए। यदि यह उचित व्याख्या है, तो इस मामले में पारित आदेशों को तुरंत खराब घोषित किया जाना चाहिए, क्योंकि शर्तें पूरी नहीं हुई हैं। हालाँकि, यह तर्क दिया जाता है कि पुनरीक्षण की शक्ति अयोग्य है और दो स्थितियाँ केवल पुनर्विचार की शक्ति के योग्य हैं। यह व्याख्या स्वीकार्य होती यदि 'उनके/उसके अधीनस्थ' शब्द के बाद अल्पविराम होता। दुर्भाग्य से अल्पविराम 'पूर्ववर्ती' शब्द के बाद है और यह तर्कपूर्ण है कि संशोधन और पुनर्विचार दोनों को इन शर्तों के अधीन बनाया गया है।”

कलकत्ता उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश ने हरबंस लाई अरोड़ा के मामले (1) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा उस नियम पर रखे गए नियम 1725 की व्याख्या के मामले में कुछ संदेह व्यक्त किया, लेकिन मामले में जारी किए गए नियम को यह देखते हुए पूर्ण करने के लिए आगे बढ़े कि इस बिंदु (नियम 1725 की व्याख्या) को अंतिम रूप से तय करना आवश्यक नहीं था क्योंकि याचिकाकर्ता को उसके बचाव में कभी नहीं सुना गया था और प्रथम चरण और अपीलीय चरण दोनों में केवल कागजात पढ़ने पर मामला उसके खिलाफ तय किया गया था।

(7) इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने नियम 1725 का उल्लेख करते हुए, दो शक्तियों के प्रयोग के तरीके के बीच इस अंतर को निम्नलिखित शब्दों में देखा: -
"इस प्रकार, यह नियम रेलवे बोर्ड, महाप्रबंधक या मंडल अधीक्षक को दोहरी शक्ति देता है। वे किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा पारित किसी भी आदेश को संशोधित कर सकते हैं। इसे पुनरीक्षण शक्ति कहा जा सकता है। वे अपने स्वयं के या किसी पूर्ववर्ती के आदेशों की भी समीक्षा कर सकते हैं। इसे समीक्षा की शक्ति कहा जा सकता है, जिसका प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब कुछ नए तथ्य सामने आएं या कर्मचारी ने अपने बाद के आचरण से यह साबित कर दिया हो कि वह उस पर लगाए गए दंड को कम करने का हकदार है।"

हरबंस लाई अरोड़ा के मामले (1) में, उन्हें सेवा से हटाने के प्रारंभिक आदेश को एक उच्च प्राधिकारी द्वारा संशोधित किया गया था और उन्हें बहाल करने का निर्देश दिया गया था। हरबंस लाई को वास्तव में उस आदेश के अनुपालन में बहाल कर दिया गया था। इसके बाद, उन पर सज़ा लगाने का एक नया आदेश पारित किया गया। यह उन परिस्थितियों में था, कि यह माना गया कि नियम 1725 के तहत पुनरीक्षण की शक्ति याचिकाकर्ता के दोबारा ड्यूटी पर आते ही समाप्त हो गई थी और हरबंस लाई अरोड़ा की बिना शर्त बहाली और पुराने आरोपों के पुनरुद्धार के आदेश की कोई भी बाद की समीक्षा की गई थी और पुरानी जांच का पुनरुत्थान केवल तभी किया जा सकता था जब नए तथ्य सामने आए हों। यह समीक्षा के चरण के संबंध में कहा गया था, न कि पुनरीक्षण की शक्ति के पहले प्रयोग के संबंध में। मेरे सामने मामला पुनरीक्षण का है, समीक्षा का नहीं।

(8) मैं व्यक्तिगत रूप से हरबंस लाई अरोड़ा के मामले (1) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण से सहमत हूं। कलकत्ता उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश के प्रति अत्यधिक सम्मान, जिन्होंने श्री स्वदेश भूषण घोष के मामले का फैसला किया (2)। मेरा मानना है कि नियम में केवल विराम चिह्न लगाने से उसकी अलग व्याख्या नहीं हो जाती। किसी वैधानिक प्रावधान की व्याख्या में विराम चिन्हों को आम तौर पर नजरअंदाज कर दिया जाता है। किसी भी घटना में, नियम की भाषा, जिससे हम चिंतित हैं (नियम 1736), नियम के दोनों भागों के दायरे के भिन्न होने के मामले में कोई संदेह नहीं छोड़ती है। एकमात्र आधार जिस पर हरबंस लाई अरोड़ा के मामले (1) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले की शुद्धता पर कलकत्ता उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश द्वारा संदेह किया गया था, वर्तमान मामले में अस्तित्व में नहीं है। इसलिए, मेरा विचार है कि न तो इलाहाबाद उच्च न्यायालय और न ही कलकत्ता उच्च न्यायालय का निर्णय याचिकाकर्ता के लिए कोई फायदेमंद है।

(9) श्री बाली द्वारा अंतिम रूप से तर्क दिया गया है कि विवादित आदेश विशेष रूप से नियम 1736 का उल्लेख नहीं करता है। मैं इसे आदेश में कोई घातक दोष नहीं मानता हूं, मैं इस प्रस्ताव पर सहमति देने में असमर्थ हूं कि एक वैधानिक नियम द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए एक सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया जाना चाहिए केवल इसलिए कि यह उस विशेष नियम का उल्लेख नहीं करता जिसके तहत शक्ति का प्रयोग किया गया है।

पहले से दर्ज कारणों से यह माना जाता है कि:-

(i) नियम 1736 के पहले वाक्य द्वारा उसमें नामित अधिकारियों को प्रदत्त पुनरीक्षण की शक्ति उस नियम के दूसरे वाक्य के आधार पर उन प्राधिकारियों में निहित समीक्षा की शक्ति से तीन मायनों में भिन्न है, जैसे-

(ए) जबकि वे अधिकारी जुर्माना लगाने वाले मूल आदेश को भी संशोधित कर सकते हैं, वे केवल अपीलीय आदेश की समीक्षा कर सकते हैं;

(बी) जबकि पुनरीक्षण केवल पुनरीक्षण प्राधिकारी के अधीनस्थ अधिकारी द्वारा पारित कुछ आदेश का होना चाहिए, समीक्षा की शक्ति उस प्राधिकारी में निहित है जिसने समीक्षा के तहत आदेश पारित किया या उसके पूर्ववर्ती में; और

(सी) जबकि जिन आधारों पर किसी आदेश को संशोधित किया जा सकता है, वे किसी भी तरीके से सीमित नहीं हैं, समीक्षा की शक्ति नियम में निर्धारित सीमाओं से सीमित है, यानी, यदि मामले पर ताजा प्रकाश डाला गया है या कर्मचारी का आचरण लगाए गए दंड को कम करने का मामला स्थापित करता है; और

(ii) उस नियम के तहत पारित आदेश में प्रासंगिक वैधानिक नियम का उल्लेख न करने मात्र से आदेश अमान्य नहीं हो जाता, जो अन्यथा वैध है।

(10) इस मामले में किसी अन्य बिंदु पर बहस नहीं की गई है। इसलिए, यह रिट याचिका विफल हो जाती है और लागत के संबंध में बिना किसी आदेश के खारिज कर दी जाती है।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

स्मृति

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

कुरूक्षेत्र, हरियाणा